डॉ. अनिरुद्ध प्रसाद
हिन्दी विभाग
महाराजा कालेज

आधुनिक काल (प्रगतिवाद)

प्रश्न : प्रगतिवादी काव्य का उद्भव एवं उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर सन् 1935 के आस-पास एम. फार्स्टर के सभापतित्व में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन' नामक एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। सन् 1936 ई. में भारत में सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद के प्रयत्नों से इस ~~संस्था~~ संस्था की शाखा 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुयी। इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में हुआ जिसकी अध्यक्षता प्रेमचंद जी कर रहे थे। शुरू-शुरू में इस संगठन में सामाजिक मंगल में विश्वास रखने वाले सभी प्रकार के साहित्यकार को इसमें रखा गया। बाद में यह संस्था मुख्य रूप से कम्यूनिस्ट पार्टी के मोर्चे के रूप में काम आने लगी। यहीं से इस प्रकार के साहित्य का संघटित रूप आंदोलन के प्रचार और प्रसार के रूप में शुरू हुआ जिसे आगे चलकर प्रगतिवादी नाम दिया गया।

प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित एक ऐसा आंदोलन था जिसमें विशेषकर मजदूरों और किसानों की समस्या पर अत्याधिक जोर दिया गया था। इस विचारधारा के अनुसार संसार का स्वरूप भौतिक है, वह किसी चेतन एवं सत्ता का परिणाम नहीं है। उसकी प्रत्येक व्यवस्था की व्याख्या की जा सकती है। कुछ भी अज्ञेय या अनिर्वचनीय नहीं है। इस मत के मानने वाले साहित्यकार रहस्यवाद में विश्वास नहीं करते। प्रकृति या ईश्वर के निष्ठुर परिहास की बात नहीं सोचते। भाग्यवाद के ढकोसले को नहीं मानते। इस मत के अनुसार समाज निरंतर विकासशील है। आर्थिक विधानों में परिवर्तन के कारण समाज में भी परिवर्तन दिखलाई देते हैं। इस मत को स्वीकार करने वाला साहित्यिक समाज रूढ़ियों से आया हुआ शासक या ईश्वर की निर्भ्रांत आज्ञाओं पर क्षमा मानता है, ऊँच-नीच का विधान

P.T.O

(2)

भी उस अपरिवर्तनीय सनातन सत्ता से आयी है।

शिवदान सिंह चौहान ने अपनी पुस्तक 'प्रगतिवाद' में लिखा है – "प्रगतिवाद साहित्य की वह धारा है जो पूंजीवाद के अंतिम काल में उत्पन्न होती है, जो पूंजीवादी साहित्य कला की सारी कामयाबियों और सजीव परंपराओं को ग्रहण कर एक नए जन-साहित्य का निर्माण करती है।" चौहान की इस परिभाषा में ऐतिहासिक भ्रांति है। हिन्दी में जो प्रगतिवाद का दौर आया वह पूंजीवाद का अंतिम काल नहीं।

अशोक कुमार सिंह के अनुसार → "मार्क्सवादी विचारधारा को साहित्य का प्रगतिवाद समझा जा सकता है। डा० नामवर सिंह एवं डा० रामविलास शर्मा आदि प्रगतिशील अथवा प्रगतिवाद को एक अर्थ में लेते हैं। उनका मानना है "प्रगतिशील साहित्य का मतलब उस साहित्य से है जो समाज को आगे बढ़ाता है। मनुष्य के विकास मे सहायक होता है।

कविता में छायावाद का विकास ~~[illegible]~~ लगभग एक- सा था। कवि कुछ नये विचारों एवं व्यंजनाओं की खोज में थे। ऐसे समय में यूरोप से लौटे कुछ हिन्दुस्तानी लेखकों ने प्रगतिवाद की ~~[illegible]~~ आवाज लगायी। उनकी यह आवाज छायावादी कवियों से भिन्न एक अलग स्वर की आवाज थी। फलत; सुमित्रानंदन पंत ने छायावाद का 'युगांत' घोषित कर दिया और प्रगतिवाद का प्रचार-प्रसार करने लगे। धीर-धीरे निराला और महादेवी ने भी अपनी सीमाओं से ऊपर उठकर इसे अपनाया।

प्रगतिवाद को कुछ लोगों ने विदेशी घोषित कर दिया। उन्हें जान लेना चाहिए कि प्रगतिवाद इस देश की मिट्टी की आबो-हवा से ही वह पैदा हुआ था। देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक वातावरण के कारण ही इसका प्रादुर्भाव हुआ था। प्रेमचंद की 'गबन' तथा जयशंकर प्रसाद की 'तितली' को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

सन 1930 के आस-पास ही कविता के क्षेत्र में इसका प्रभाव देखा जाने लगा था। कविता में कल्पना की जगह ठोस यथार्थ अपना स्वरूप ग्रहण करने

P.T.O

लगा था। वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता ने अपना स्थान ग्रहण किया। आलोचना के क्षेत्र में शुक्ल जी लोकमंगल की भावना लेकर आ चुके थे इस प्रकार सामाजिक मूल्यांकन के लिए वे आगे का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे।

हिन्दी काव्य क्षेत्र में हम यथार्थवाद का नाना प्रकार के रूप देखते हैं। पंत छायावाद से विराम ले चुके थे। उन्होंने घोषणा की - इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। पंत ने मध्यम वर्ग, श्रमजीवी एवं कृषक वर्ग पर कविता लिखी। उन्होंने गावों में संस्कृति जनों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। 'ग्राम्या' की रचनाओं यह सहानुभूति स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ती है।

'भारत माता ग्राम वासिनी
मिट्टी की प्रतिमा उदासनी।'

'रूपाभ' में पंत के सहयोगी नरेन्द्र शर्मा को देवली कैम्प में नजरबंद कर दिया गया। वहाँ से भी उन्होंने अंग्रेजी राज को चुनौती दिया। उन्होंने लिखा - "गति को कब तक बाँध सकोगे
पूछो पहरेदारों से।"

पंत के बाद केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा, तथा निराला ने आगे का रास्ता बनाया। निराला 'खजोहरा' और 'कुकुरमुत्ता' लिख रहे थे। जिनकी बोलचाल की शैली नए यथार्थ का रूप ग्रहण कर रही थी, सन् 1940-41 ई० के आस-पास केदारनाथ, मुक्तिबोध और नेमिचंद की विचारधारा बदलने लगी। वे प्रगतिवाद की ओर लौटे। उन दिनों सुभाषचंद्र बोस से लेकर साम्यवादियों तक सभी वाम-पक्ष की ओर झुक रहे थे।

प्रगतिशीलता उस समय नवजागरण के दूत के रूप में आया था। प्रगतिशील कविता के जो रूप थे वे सामाजिक-पारिवारिक प्रेम के रूप में व्यक्त हुआ था। वह प्रयोगवाद के स्वैराचार और कुंठा भरे प्रेम काव्य में नहीं मिल सकता। प्रगतिशील कवि का प्रेम काव्य स्फूर्तिदायक है, इसलिए कि वह प्रेम को संपूर्ण अंग समझकर अनुभव करता है।

उसका प्रेम सामाजिक भावना को भी जन्म देता है। कवि त्रिलोचन की ये पंक्तियाँ देखने योग्य है —

"मुझे जगत जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्यार तुम्हारा"

प्रगतिवादी कवि गाँव और जनपद को प्यार करता है। उसी प्यार की वजह से वह देश-प्रेम की व्यंजना करता है। नागार्जुन ने अपनी जन्म-संबंधी कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वरूप दिया है। वह देश को खुशहाल और समुन्नत बनाना चाहते हैं। प्रगतिवादी कवि देश की समस्याओं पर ध्यान देता है, वह देश को स्वाधीन कराना चाहता है। प्रगतिवादी साहित्य में शोषित, उत्पीड़ित किसान-मजदूर तथा नारियों के सम्मान की बात उठायी गयी है। यहाँ ईश्वरवाद तथा भाग्यवाद का विरोध है और सामाजिक-समस्याओं का अंकन है। पंत नारी के विषय में लिखते हैं —

"योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।"

डॉ० नामवर सिंह ने लिखा है — "बहुत सजाव और सिंगार और पेचीदगी प्रगतिशील कविता में नहीं मिलती। अपनी बात को कितना सुलझाकर उसे कितने सहज ढंग से कह दिया जाए यही प्रगतिशील की कविता की विशेषता है।

प्रगतिवादी कविता के व्यंग्य तीखे है। नागार्जुन इस संबंध में खास ध्यान खींचते हैं —

"घुन खाये शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बाँचे।
फटी भीत है छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे।
बरसाकर बेबस बच्चों पर, मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह दुखहरण मास्टर, गढ़ता है आदम के साँचे।"

इस प्रकार प्रगतिवादी कविता अपने कलेवर में एक सामाजिक आंदोलन समेटे हुए है जहाँ मनुष्य को सब प्रकार के शोषणों और बंधनों से मुक्त करने की महिमामयी गीत गाया गया है।

P.G. Semester II
CC-5
"Pragativadi Kavya ki Visheshta"